

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 7: सम्राट् भरत

18 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



पृथ्वी पर शासन कर और उसका प्रत्येक फल भगवान् को अर्पित कर, सम्राट् भरत पुलह ऋषि के आश्रम में जाकर परम पुरुष की आराधना करते हैं — उनका हृदय प्रेम में द्रवित, नेत्रों से अश्रु बहते हुए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

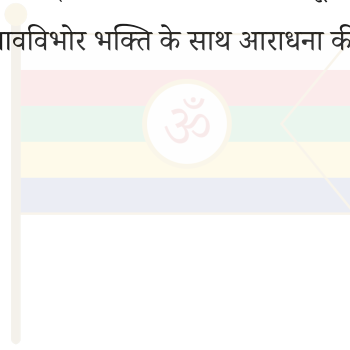
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पिछले अध्याय में भगवान् ऋषभदेव की पार्थिव कथा अपने शान्त समापन तक पहुँची। अब श्रीशुकदेव गोस्वामी ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र, महान् भक्त भरत के जीवन की ओर मुड़ते हैं — वे सम्राट् जिनके नाम से ही यह भूमि भारतवर्ष कहलाई। पंचम स्कन्ध का यह सातवाँ अध्याय बताता है कि

किस प्रकार भरत ने सिंहासन पर बैठे एक सन्त के समान समस्त पृथ्वी पर शासन किया, प्रत्येक यज्ञ का फल भगवान् वासुदेव को अर्पित करते हुए; किस प्रकार, अपना राजकर्तव्य पूर्ण होने पर, उन्होंने सब कुछ त्यागकर एक वन-आश्रम में प्रस्थान किया; और किस प्रकार, उस एकान्त में, भगवान् के प्रति उनका प्रेम इतना प्रबल हो उठा कि वे आराधना के आनन्द में रो पड़े और आराधना को ही भूल गए।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 7 (सप्तम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: सम्राट् भरत की कथा
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: भारतवर्ष का राज्य, और तत्पश्चात् गण्डकी नदी के तट पर शालग्राम में स्थित पुलह ऋषि का आश्रम
- केन्द्रीय विषय: किस प्रकार सम्राट् भरत ने शासन किया और यज्ञ के द्वारा भगवान् की आराधना की, कर्तव्य पूर्ण होने पर सिंहासन त्यागा, पुलह के आश्रम में प्रस्थान किया, और परम पुरुष की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई भावविभोर भक्ति के साथ आराधना की
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 7, श्लोक 1-14
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय से

पंचम स्कन्ध का छठा अध्याय भगवान् ऋषभदेव की कथा को समापन तक ले गया, यह बताते हुए कि किस प्रकार भगवान्, भीतर परम आत्मा में पूर्णतया लीन, दक्षिण के वनों में विचरण करते हुए अपनी देह त्याग गए, और किस प्रकार श्रीशुकदेव ने उस भूमि की महिमा गाई जहाँ भगवान् अवतरित हुए थे। वन में जाने से पूर्व, ऋषभदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र, महान् भक्त भरत को सिंहासन पर अभिषिक्त किया था। यह अध्याय भरत की अपनी कथा को आगे बढ़ाता है — वे सम्राट् जिनकी भक्ति इतनी पूर्ण थी कि यह समस्त भूमि, जो कभी अजनाभ कहलाती थी, उनके ही नाम से अंकित हो गई।

भरत सिंहासन पर आरूढ़ होते हैं

जब भगवान् ऋषभदेव द्वारा उस महान् भक्त भरत को पृथ्वी के शासन के लिए नियुक्त किया गया, तब उन्होंने यह भार सबसे बढ़कर अपने पिता की आज्ञा पालन के भाव से ग्रहण किया, और विश्वरूप की पुत्री पंचजनी से विवाह किया।

श्रीशुक उवाच

भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवतावनितलपरिपालनाय सञ्चिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥ १ ॥

śrī-śuka uvāca bharatas tu mahā-bhāgavato yadā bhagavatāvani-tala-paripālānāya sañcintitas tad-anuśāsana-paraḥ pañcajanīṁ viśvarūpa-duhitaram upayeme

अर्थ: श्रीशुक ने कहा: महान् भक्त भरत, जब भगवान् द्वारा पृथ्वी के पालन के लिए नियुक्त किए गए, तब भगवान् की आज्ञा पालन में तत्पर रहते हुए, उन्होंने विश्वरूप की पुत्री पंचजनी से विवाह किया। (स्कन्ध 5, अध्याय 7, श्लोक 1)

उनके द्वारा, जैसे अहंकार-तत्त्व पाँच सूक्ष्म भूतों को जन्म देता है, वैसे ही उन्होंने अपने ही समान पाँच पुत्र उत्पन्न किए — सुमति, राष्ट्रभृत्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु। और उन्हीं के समय से यह वर्ष, जो तब तक अजनाभ नाम से जाना जाता था, सम्राट् के ही नाम पर भारत कहलाने लगा।



सम्राट् भरत, अपने पिता भगवान् ऋषभदेव द्वारा नियुक्त एक महान् भक्त, अपनी रानी पंचजनी और पाँच पुत्रों के साथ पृथ्वी पर शासन करते हैं, इस भूमि को उसका चिरस्थायी नाम प्रदान करते हुए (श्लोक 1-3)।

एक राजा जिसने सन्त के समान शासन किया

अपने पिता ऋषभ और पितामह राजा नाभि के समान अपने कर्तव्य में निष्ठावान् रहकर, भरत — विशाल ज्ञान और प्रजा के प्रति असीम स्नेह से युक्त एक राजा — ने अपनी प्रजा का पालन किया, जिसमें प्रत्येक अपने-अपने निर्धारित कर्म में निष्ठापूर्वक लगा रहता था। नियत समयों पर वे यज्ञ-रूप में प्रकट होने वाले भगवान् की आराधना करते, छोटे और बड़े दोनों प्रकार के, प्रत्येक विधि में पूर्ण पवित्र कर्म करते हुए, उचित अधिकार के अन्तर्गत और योग्य ऋत्विजों के सहयोग से।

किन्तु उनकी आराधना को जो विशिष्ट बनाता था, वह उसके भीतर का भाव था। जब आहुतियाँ पवित्र अग्नि में अर्पित होने को होतीं, तब सम्राट् भरत मन ही मन उस फल को — पुण्य के प्रत्येक अंश को — जिसे वे स्वयं ग्रहण कर सकते थे, पूर्णतया भगवान् वासुदेव को अर्पित कर देते, जो समस्त यज्ञ के आत्मा और उसके सच्चे कर्ता हैं। इस विवेक से उनके राग-द्वेष क्षीण हो जाने पर, जब-जब पुरोहित प्रत्येक आहुति उठाते, वे

अपने मन की आँखों से अनेक पृथक् शक्तियाँ नहीं, अपितु उनके पीछे विद्यमान एक ही परम पुरुष की देह देखने लगे — इन्द्र उनकी भुजा के रूप में, सूर्यदेव उनके नेत्र के रूप में — जिससे यज्ञ में जिस भी देवता का नाम लिया जाए, वह आहुति भगवान् वासुदेव तक ही पहुँचती (श्लोक ५-६)।

सम्प्रचरत्सु नानायागेषु विरचिताङ्गक्रियेष्वपूर्वं यत्तत्क्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिङ्गानां मन्त्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तारि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्यमृदितकषायो हविःष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवांस्तान् पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥ ६ ॥

*sampracaratsu nānā-yāgeṣu viracitāṅga-kriyeṣv apūrvam yat tat kriyā-phalam dharmākhyam
pare brahmaṇi yajña-puruṣe sarva-devatā-līṅgānām mantrāṇām artha-niyāma-katayā sākṣāt-
kartari para-devatāyām bhagavati vāsudeva eva bhāvayamāna ātma-naipuṇya-mṛdita-kaṣāyo
haviḥṣv adhvaryubhir gṛhyamāṇeṣu sa yajamāno yajña-bhājo devāms tām puruṣāvayaveṣv
abhyadhyāyat*

अर्थ: अनेक यज्ञ अपनी विहित विधियों से सम्पन्न होते रहे, तब भरत ने अपने मन को इस सत्य पर केन्द्रित रखा कि उनका अदृश्य फल, जिसे धर्म कहा जाता है, केवल परम पुरुष वासुदेव का है, जो यज्ञ के अधिष्ठाता हैं और जो प्रत्येक वैदिक मन्त्र तथा उसमें वर्णित प्रत्येक देवता को अर्थ एवं दिशा प्रदान करते हैं; इस बोध से अपनी अशुद्धियों को क्षीण करते हुए, यजमान भरत ने आहुतियों में भाग लेने वाले उन्हीं देवताओं को उस एक परम पुरुष के अंगों के रूप में देखा। (स्कन्ध 5, अध्याय 7, श्लोक 6)

यहाँ स्वाभाविक ही एक प्रश्न उठता है: यदि भरत पहले से ही एक शुद्ध भक्त थे, तो उन्होंने वैदिक यज्ञ की इस विस्तृत विधि का भार क्यों उठाया? इस अध्याय का मौन उत्तर यह है कि समर्पण ही भक्ति का चिह्न है, त्याग नहीं। भरत ने प्रत्येक यज्ञ इसलिए किया क्योंकि वह एक राजा को सौंपा गया कर्तव्य था, और उन्होंने उसे सम्पूर्ण रूप से अर्पित किया, अपने लिए कुछ भी न रखते हुए। जिस प्रकार वृक्ष की जड़ को सींचने मात्र से उसकी प्रत्येक शाखा और पत्ती को पोषण मिल जाता है, उसी प्रकार वासुदेव को स्रोत मानकर की गई आराधना उन समस्त देवताओं को स्वतः तृप्त कर देती है जो उन्हीं के अंग हैं; इस बोध के साथ किया गया कर्म अपने कर्ता को उस फल से नहीं बाँधता जिसे उसने कभी माँगा ही नहीं। जो अनुष्ठान ऊपर से साधारण कर्मकाण्ड-सा प्रतीत होता था, वही भरत के हाथों में कर्म-बन्धन की एक और कड़ी नहीं, अपितु मुक्ति का द्वार बन गया।

उनके हृदय में भक्ति का उदय

जैसे-जैसे उनके कर्मों की परम पवित्रता से उनका मन शुद्ध होता गया, उनके हृदय में भगवान् वासुदेव के प्रति एक प्रेममयी भक्ति का उदय हुआ — एक ऐसी भक्ति जो प्रत्येक बीतते दिन के साथ अधिक प्रगाढ़ होती गई। वे अपने ही हृदयाकाश में परम पुरुष का दर्शन करते, जो श्रीवत्स के चिह्न और कौस्तुभ मणि से युक्त, वनमाला धारण किए, और चक्र तथा गदा लिए हुए थे, वहाँ अपने भक्त के हृदय में चित्रित एक प्रतिमा के समान देदीप्यमान।

एवं कर्मविशुद्ध्या विशुद्धसत्त्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे
श्रीवत्सकौस्तुभवनमालारिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां
भक्तिरनुदिनमेधमानरयाजायत ॥ ७ ॥

*evaṁ karma-viśuddhyā viśuddha-sattvasyāntar-hṛdayākāśa-śarīre brahmaṇi bhagavati
vāsudeve mahā-puruṣa-rūpopalakṣaṇe śrīvatsa-kaustubha-vana-mālāri-dara-gadādibhir
upalakṣite nija-puruṣa-hṛl-likhitenātmāni puruṣa-rūpeṇa virocamaṇa uccaistarām bhaktir
anudinam edhamāna-rayājāyata*

अर्थ: इस प्रकार, अपने कर्मों की पवित्रता से, अब पूर्णतया शुद्ध भरत के हृदय में भगवान् वासुदेव के प्रति — उस परम पुरुष के प्रति, जो श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, शंख, चक्र और गदा से युक्त, भीतर भक्त के हृदय में चित्रित प्रतिमा-सा देदीप्यमान थे — एक ऐसी भक्ति का उदय हुआ जो दिन-प्रतिदिन प्रबल होती गई। (स्कन्ध 5, अध्याय 7, श्लोक 7)

भरत सिंहासन का त्याग करते हैं

एक करोड़ वर्षों तक शासन करने के पश्चात्, भरत ने यह निश्चय किया कि जिस पुण्य-राशि ने उन्हें यह राज-सम्पदा दी थी, वह अब तक पूर्णतया भोग ली गई होगी। अतः उन्होंने अपने वंशानुगत राज्य को अपने पुत्रों में न्यायपूर्वक विभाजित किया और, अपने प्रासाद को — जो समस्त समृद्धि का धाम था — छोड़कर, गण्डकी नदी के तट पर पुलह ऋषि के आश्रम में एक विरक्त के रूप में प्रस्थान किया, वह स्थान जो शालग्राम नाम से जाना जाता है।

कहा जाता है कि उसी आश्रम में, वहाँ निवास करने वाले भक्तों के प्रति अपने पितृवत् स्नेह से आकर्षित होकर, भगवान् श्रीहरि आज भी उस रूप में प्रकट होते हैं जिसे प्रत्येक भक्त देखने की अभिलाषा करता है। पावन गण्डकी नदी उस स्थान को चारों ओर से पवित्र करती है, उसकी धारा में वे पवित्र चक्रांकित पत्थर — शालग्राम शिलाएँ — लुढ़कते रहते हैं जो भगवान् विष्णु का चिह्न धारण करते हैं।

यत्र ह वाव भगवान् हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन सन्निधाप्यत इच्छारूपेण ॥ ९ ॥

*yatra ha vāva bhagavān harir adyāpi tatratyānām nija-janānām vātsalyena sannidhāpyata
icchā-rūpeṇa*

अर्थ: उस आश्रम में भगवान् श्रीहरि, वहाँ निवास करने वाले अपने भक्तों के प्रति कोमल स्नेह के कारण, आज भी उस रूप में स्वयं को प्रकट करते हैं जिसे वे देखना चाहते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 7, श्लोक 9)



अपना सिंहासन त्यागकर, सम्राट् भरत शालग्राम में पुलह ऋषि के आश्रम में प्रस्थान करते हैं, जहाँ पावन गण्डकी उन पवित्र चक्रांकित पत्थरों के साथ बहती है (श्लोक 8-10)।

वन के एकान्त में आराधना

उस उपवन के एक निर्जन कोने में, भरत ने पूर्णतया अकेले भगवान् की आराधना की, अनेक प्रकार के पुष्प और कोमल पत्ते अर्पित करते हुए — विशेषतः पावन तुलसी-दल — तथा जल, और कन्द, मूल एवं फल का सादा वन-आहार। समस्त इन्द्रिय-सुखों की तृष्णा से मुक्त होकर, वे अद्भुत रूप से शान्त हो गए और अपनी आराधना से एक परम एवं मौन आनन्द प्राप्त किया।

दिन-प्रतिदिन उनका प्रेम इतना गहरा होता गया कि, उस निरन्तर बढ़ती भक्ति के दबाव में, उनका हृदय मानो द्रवित हो उठा। आनन्द के रोमांच में उनके सारे शरीर के रोंगटे खड़े हो गए; भगवान् के दर्शन की उत्कण्ठा से उनके नेत्र अश्रुओं से भर आए; और उनकी चेतना अपने ही हृदय के उस गहरे सरोवर में डूब गई, जो भगवान् के लाल कमल-से चरणों के प्रेममय स्मरण के आनन्द से छलक रहा था — यहाँ तक कि, उस परमानन्द में लीन, वे उस आराधना को भी भूल गए जिसे उनके हाथ कर रहे थे।

तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्धिमानरोमपुलककुलक
औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारविन्दानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन
परिप्लुतपरमाह्लादगम्भीरहृदयहृदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥ १२ ॥

*tayettham avirata-puruṣa-paricaryayā bhagavati pravardhamānānurāga-bhara-druta-hṛdaya-
śaithilyaḥ praharṣa-vegenātmānany udbhidyamāna-roma-pulaka-kulaka autkaṇṭhya-pravṛtta-
praṇaya-bāṣpa-niruddhāvaloka-nayana evaṁ nija-ramaṇāruṇa-caraṇāravindānudhyāna-
paricita-bhakti-yogena paripluta-paramāhlāda-gambhīra-hṛdaya-hradāvagāḍha-dhiṣaṇas tām
api kriyamāṇāṁ bhagavat-saparyāṁ na sasmāra*

अर्थ: परम पुरुष की इस निरन्तर आराधना से उनका हृदय, उत्तरोत्तर बढ़ते प्रेम से अभिभूत होकर, द्रवित एवं कोमल हो गया; आनन्द के वेग में उनके शरीर के रोंगटे खड़े हो गए, प्रेममयी उत्कण्ठा के अश्रुओं से उनके नेत्र ऐसे धुँधले हो गए कि वे मुश्किल से देख पाते, और उनका मन, भगवान् के अरुण कमल-चरणों के निरन्तर ध्यान से परम आनन्द से छलकते हृदय-सरोवर में निमग्न होकर, उस आराधना को भी भूल गया जिसे वे कर रहे थे। (स्कन्ध 5, अध्याय 7, श्लोक 12)



आश्रम के एकान्त में, भगवान् के प्रति भरत का प्रेम इतना प्रबल हो उठता है कि उनके नेत्रों से अश्रु बहते हैं और वे उस आराधना को भी भूल जाते हैं जिसे उनके अपने हाथ कर रहे हैं (श्लोक 12)।

परम ज्योति की स्तुति

इन पावन व्रतों को धारण कर, मृगचर्म धारण किए, अपने पीले जटाजूट को दिन में तीन बार किए गए स्नान से अभी भी भीगा हुए, भरत उदित होते सूर्य के मण्डल में प्रकट सर्व-तेजोमय भगवान् नारायण की उपासना करते और परम ज्योति की यह स्तुति करते:

परोरजः सवितुर्जातिवेदो

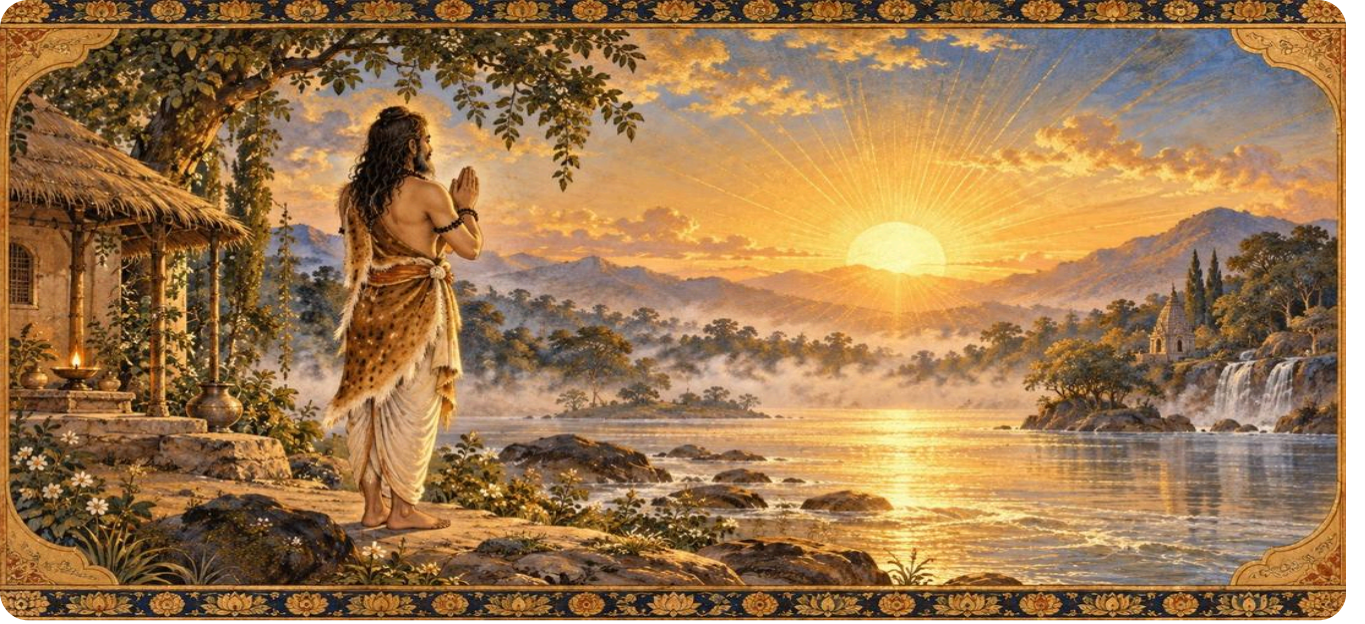
देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ।

सुरेतसादः पुनराविश्य चष्टे

हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥ १४ ॥

paro-rajah savitur jāta-vedo devasya bhargo manasedam jajāna suretasādaḥ punar āviśya caṣṭe haṁsam gṛdhrāṇaṁ nṛṣad-riṅgirām imaḥ

अर्थ: दिव्य सूर्य की वह परम ज्योति — जो रजोगुण से परे और समस्त ज्ञान का स्रोत है — अपने मात्र संकल्प से इस विश्व को उत्पन्न करती है और, उसमें पुनः अन्तर्यामी के रूप में प्रवेश कर, प्रत्येक जीव की रक्षा करती है। हम उस ज्योति का ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि को प्रेरित करती है। (स्कन्ध 5, अध्याय 7, श्लोक 14)



मृगचर्म धारण किए, अपने जटाजूट को स्नान से भीगा हुए, भरत उदित होते सूर्य के मण्डल में भगवान् नारायण की उपासना करते और उस परम ज्योति की स्तुति करते हैं जो समस्त बुद्धि को प्रेरित करती है (श्लोक 13-14)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

सेवक के हृदय से शासन करो। भरत ने एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया, फिर भी वे भीतर से एक विरक्त थे, प्रत्येक कर्म का फल भगवान् को अर्पित करते हुए। पद और कर्तव्य हमें बाँधें, यह आवश्यक नहीं; आराधना-रूप में किए जाने पर और उनके फल को समर्पित करने पर, वे हृदय को शुद्ध करते हैं।

केवल कर्म नहीं, फल अर्पित करो। भरत की आराधना का रहस्य यह था कि उन्होंने अपने लिए कुछ भी नहीं रखा, अपने यज्ञों के फल तक को भगवान् वासुदेव को समर्पित कर दिया। जब फल भगवान् को दे दिया जाता है, तब कर्म स्वयं मुक्ति का मार्ग बन जाता है।

जानो कि कब कर्तव्य पूर्ण हुआ, और छोड़ दो। दीर्घ एवं निष्ठावान् शासन के पश्चात्, भरत ने पहचाना कि उनका सांसारिक लेखा पूर्ण हो चुका है, और उन्होंने बिना किसी खेद के त्याग किया। यह जानने में एक विवेक है कि कब उत्तरदायित्व धारण करना है और कब उसे रख देना है।

भक्ति दैनिक साधना से बढ़ती है। भरत का प्रेम एक ही बार में नहीं आया; यह शुद्ध कर्म और निरन्तर आराधना के द्वारा “दिन-प्रतिदिन” गहरा होता गया। तीव्रता से अधिक निरन्तरता ही वह है जो भगवान् के प्रति प्रेम को परिपक्व होने देती है।

आराधना का लक्ष्य प्रेम ही है। अन्ततः भरत प्रेममय स्मरण में इतने लीन हो गए कि वे अनुष्ठान को ही भूल गए। भक्ति के बाह्य रूप इसी आन्तरिक प्रेम को जागृत करने के लिए हैं — और जब प्रेम जागृत होता है, तब वह स्वयं ही अपनी पूर्णता है।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में भरत के जीवन का एक सुन्दर वृत्त है — सिंहासन से वन तक, पृथ्वी पर शासन करने से लेकर आराधना के आनन्द में अपने ही हाथों को भूल जाने तक। और जो हृदय को सबसे अधिक छूता है, वह उनका त्याग नहीं, अपितु वह कोमलता है जिसे उस त्याग ने अनावृत किया। यहाँ एक ऐसा पुरुष था जिसने समस्त संसार को अपने भार में रखा था, फिर भी उनका महानतम क्षण तब आया जब वे भगवान् के

समक्ष रोते हुए खड़े थे, अपने ही अश्रुओं से देख न पाते हुए, उस अनुष्ठान का ही सुध खोकर जिसे वे कर रहे थे। वह विस्मृति कोई भूल नहीं है; वह एक ऐसे प्रेम का फल है जो इतना परिपूर्ण है कि उसे धारण करने के लिए बनाए गए प्रत्येक रूप को छलका देता है। हममें से अधिकांश एक राज्य का त्याग नहीं कर सकते, और हमसे यह अपेक्षित भी नहीं है। किन्तु हम भरत का आन्तरिक भाव सीख सकते हैं: अपना कार्य निष्ठापूर्वक करना, उसका फल पकड़े रखने के स्थान पर भगवान् को अर्पित करना, और अपने दैनिक स्मरण को चुपचाप इतना गहरा होने देना कि एक दिन वह स्मरण ही हमारे लिए सबसे मधुर वस्तु बन जाए।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, एक साधारण कर्तव्य चुनिए — अपना कार्य, घर का कोई काम, कोई सेवा का कर्म — और, उसे आरम्भ करने से पूर्व, उसका फल मन ही मन भगवान् को अर्पित कीजिए, अपने लिए कुछ भी न रखते हुए। फिर, जैसे भरत प्रत्येक प्रातःकाल करते थे, प्रातः के प्रकाश की ओर मुख कर एक क्षण के लिए स्मरण की एक संक्षिप्त प्रार्थना कीजिए, यह दोहराते हुए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” ऐसा करते हुए, उस परम ज्योति का ध्यान कीजिए जो हमारे भीतर समस्त बुद्धि को जागृत करती है। इस छोटे से कर्म को आराधना और कार्य को जोड़ने दीजिए, ताकि दिन का सरलतम श्रम भी भगवान् के चरणों में कोमलता से रखा गया एक अर्पण बन जाए।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का सातवाँ अध्याय सम्राट् भरत की देदीप्यमान कथा कहता है, वे महान् भक्त जिनके नाम से यह भूमि अंकित है। अपने पिता भगवान् ऋषभदेव द्वारा नियुक्त, उन्होंने समस्त पृथ्वी पर विवेक और प्रेम से शासन किया, अपनी प्रजा का पालन किया और यज्ञ के द्वारा भगवान् की आराधना की — फिर भी अपने प्रत्येक कर्म का फल सदा भगवान् वासुदेव को, समस्त यज्ञ के आत्मा को, समर्पित करते हुए। जैसे-जैसे उनका हृदय शुद्ध होता गया, उनके भीतर प्रेममयी भक्ति का उदय हुआ और दिन-प्रतिदिन गहरा होता गया, यहाँ तक कि, अपना राजकर्तव्य पूर्ण होने पर, उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्रों में विभाजित किया और पावन गण्डकी के तट पर पुलह के आश्रम में प्रस्थान किया। वहाँ, पुष्पों, पत्तों और सादे अर्पणों से एकान्त में भगवान् की आराधना करते हुए, उनका प्रेम समस्त सीमाओं से परे बढ़ गया: वे स्मरण के आनन्द में अश्रुपूरित होकर रो पड़े, यहाँ तक कि अपने ही हाथों से चल रही सेवा-पूजा की सुध तक उन्हें न रही, और प्रत्येक प्रातःकाल वे उदित होते सूर्य में प्रकाशित परम ज्योति की स्तुति करते। भरत में हमें एक ऐसी आत्मा दिखाई जाती है जिसने समस्त संसार को धारण किया और फिर भी कुछ भी धारण नहीं किया, जिसका सच्चा राज्य उनके अपने हृदय के भीतर भगवान् का प्रेम था।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, सप्तम अध्याय, “The story of Bharata।”
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।

- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-7-the-story-of-emperor-bharata-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

